भारत के आदिवासी लेखक

परिचय एवं अवदान

भाग-1 : पूर्वोत्तर भारत

संपादक

रमणिका गुप्ता

रमणिका फाउंडेशन के लिए प्रकाशित

भारत के आदिवासी लेखक

परिचय एवं अवदान

शृंखला के आगामी प्रकाशन

खण्ड दो :	पूर्वी भारत	– पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, झारखण्ड, बिहार
खण्ड तीन :	दक्षिण भारत	– आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु
खण्ड चार :	पश्चिम भारत एवं मध्य भारत	– गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र, गोवा, जम्मू-कश्मीर, मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़

रमणिका फाउंडेशन

रमणिका फाउंडेशन एक पूर्णतः धर्मनिरपेक्ष, गैर राजनीतिक तथा अव्यवसायिक संस्था है। यह वर्षों से आदिवासी, दलित, अल्पसंख्यक एवं स्त्री जैसे उपेक्षित और शोषित समुदायों के सशक्तिकरण के लिए कार्य करता रहा है।

फाउंडेशन आम आदमी के प्रयासों, संघर्षों, आशाओं और आकांक्षाओं को गति देने वाले एक परिवर्तनशील एवं शिष्ट समाज को विकसित करने के लिए प्रयासरत है, जो हाशिये पर धकेले गये लाखों लोगों को मानवीय अधिकार, सम्मान, स्वास्थ्य एवं शिक्षा सुनिश्चित कर सके।

संपादक परिचय

रमणिका गुप्ता इस समय रमणिका फाउंडेशन की अध्यक्ष तथा अखिल भारतीय आदिवासी साहित्यिक मंच की को-आर्डिनेटर हैं। आप बिहार विधान सभा तथा बिहार विधान परिषद् की सदस्य भी रह चुकी हैं। आप हिन्दी त्रैमासिक पत्रिका, **युद्धरत आम आदमी** का संपादन भी करती हैं।

श्रीमती गुप्ता हिन्दी की एक जानीमानी कवियित्री तथा उपन्यासकार हैं। आपके कई कविता संग्रह, कहानी संग्रह तथा उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। आप डेमोक्रेटिक राइटर्स ऐसोसिएशन (बिहार-झारखण्ड) की सह-सचिव तथा नेशनल काउंसिल ऑफ डेमोक्रेटिक राइटर्स ऐसोसिएशन की सदस्य भी हैं। आपको सामाजिक एवं साहित्यिक कार्यों के लिए अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है।

अदेखे भारत की आदिवासी
कलम को समर्पित

परिचय

प्रस्तुत पुस्तक **'अदेखा भारत'** शृंखला की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इस बिबलियोग्राफी को प्रकाशित कर हम वस्तुतः उस धुंधलके को हटाने का प्रयास कर रहे हैं जिसने उत्तर-पूर्वी राज्यों और वहां के निवासियों को शेष भारत की दृष्टि से ओझल कर रखा है। इसे प्रकाशित कर के हम अपनी-अपनी मौलिक विशिष्टता वाले उत्तर-पूर्वी राज्यों और उनमें बसे समुदायों के बहुरंगी सांस्कृतिक परिदृश्य की एक झांकी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

उत्तर-पूर्वी राज्यों के लेखकों को किसी एक पुस्तक में शामिल कर उन्हें समुचित सम्मान तथा मान्यता देने का यह प्रथम प्रयास है। यह एक ऐतिहासिक उपलब्धि है। इसके प्रकाशन से जहां लोग उत्तर-पूर्वी आदिवासी लेखकों के प्रभावशाली अवदान से लोग जहां परिचित हो पाएंगे, वहीं इससे भारतीय वाङ्मय, भाषा एवं संस्कृति भी समृद्ध होगी।

प्रस्तुत खंड में सम्मिलित लेखक भारत के आठ उत्तर-पूर्वी राज्यों और वहां की पन्द्रह से भी अधिक भाषाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में नानाविध संस्कृतियां सांस लेती हैं और इसका अपना एक समृद्ध भाषायी एवं सामाजिक इतिहास है। पर इसके साथ ही एक दुःखद सत्य यह भी है कि राष्ट्रीय संस्कृति की मुख्यधारा द्वारा इस क्षेत्र की उपेक्षा की गई है। यह उपेक्षा इतनी गहरी है कि यह समूचा प्रदेश शेष भारत के लिए अजनबी या अदेखे भारत-सा प्रतीत होता है। देश के दूसरे भागों की यात्रा के दौरान अनेक उत्तर-पूर्वी भारतीयों को इस तटस्थ अजनबी दृष्टि झेलनी पड़ती है। कभी-कभी तो कुछ लोग उनसे यह भी पूछ बैठते हैं कि—"क्या आप भारतीय है।" प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य इस क्षेत्र के इतिहास तथा वर्तमान को उसकी पूरी संपन्नता के साथ प्रकाश में लाना है। हमें आशा है कि इस पुस्तक में सम्मिलित लेखकों तथा उनकी उपलब्धियों को एक साथ एक खंड में प्रस्तुत कर हम उत्तर-पूर्वी भारत के सृजनशील समुदायों और शेष भारतीय समाज जो दीर्घकाल से उत्तर-पूर्व के लोगों की साहित्यिक, भाषायी एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों से अनभिज्ञ रहा है, के बीच बेहद जरूरी संवाद की

शुरुआत कर पाएंगे। उत्तर-पूर्व के साहित्यकारों को इस बिबलियोग्राफी के प्रकाशन से उन्हें वह एक्सपोज़र और राष्ट्रीय स्तर पर पहचान भी दिला पाएंगे जिससे वे अभीतक वंचित रहे हैं।

उत्तर-पूर्व की भाषाएं प्राचीन भाषाएं हैं किन्तु 18वीं तथा 19वीं शताब्दी के ईसाई मिशनरियों के इस क्षेत्र में आगमन तक उनका रूप मौखिक ही रहा है। सिक्किम की लेपचा भाषा संस्कृत से भी प्राचीन मानी जाती है। पर इस भाषा की अपनी लिपि 1841 ई. में रेवरेन्ड विलियम स्टार्ट द्वारा लेपचा भाषा एवं संस्कृति का स्कूल खोलने के बाद ही विकसित की जा सकी। एक रोचक लोककथा से हमें मालूम होता है। कि प्राचीन काल में एक चर्मपत्र पर लिखित लिपि मिजो लोगों को प्रेतात्माओं ने उपहार स्वरूप दी थी पर दुर्भाग्यवश एक कुत्ता इस चर्मपत्र को खा गया। परिणामस्वरूप मिजो लोगों को अपनी भाषा की लिपि हेतु तब तक लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ी, जब तक 1894 ई. में रेवरेन्ड डब्ल्यू सेविज तथा जे.एच. लौरेन्स ने शिकारियों द्वारा आपस में बातचीत के लिए प्रयुक्त की जाने वाली भाषा की स्वर ध्वनियों पर आधारित एक लिपि तैयार नहीं कर दी। मिजोरम में यह हंटरियन भाषा प्रणाली के रूप में जानी जाती है।

बोड़ो के एक महान विद्वान रामदास बोरो का मत है कि बोरो भाषा इतनी समृद्ध थी कि इसके कई पहलू भारतीय भाषाओं के स्रोत बन गए : यह तो एक प्रामाणिक तथ्य है कि बोरो लोग भारत के आर्यों से भी पहले आए थे।

बोड़ो भाषा की भी अपनी एक लिपि थी जो बोड़ो जाति के अहोम वंश के शासनकाल में लुप्त हो गई थी। **मधुराम बोरो ने बोड़ो राजाओं के शासन काल में देवधाय लिपि के प्रचलन में होने का उल्लेख किया है जो कि दीमापुर के शाही दरवाजे पर उत्कीर्ण है।** 1895 में रेवरेन्ड जे.डी. एंडरसन ने बोड़ो भाषा की एक नई लिपि के साथ-साथ उसका व्याकरण तैयार किया। खासी भाषा का लिखित रूप थॉमस जोन्स नामक एक वेल्शवासी के निर्देशन में 1810 से 1849 के बीच तैयार हुआ, जिसे खासी बुद्धिजीवी जीवन राय तथा राधोन सिंह बेरी ने संशोधित कर कूटबद्ध किया। विगत सौ-डेढ़ सौ वर्षों के साहित्य का विपुल भंडार रचने की उपलब्धि अत्यन्त प्रभावशाली है। मात्र पचास वर्षों की अवधि के बोड़ो भाषा में जिस बड़े परिणाम में साहित्य रचा गया, उसकी चर्चा करते हुए एक आदिवासी लेखक ने बोड़ो साहित्य को "सरपट दौड़ते घोड़े" की उपमा दी है। हालांकि उत्तर-पूर्वी भाषाओं का विकास समान रूप से नहीं हुआ है, फिर भी, कुछ भाषाओं में साहित्य जगत में दूसरी भाषाओं की अपेक्षा अधिक सफलता अर्जित की है। उदाहरणार्थ दो लेखिकाओं सहित कुल छह मिजो